THE ECONOMIC TIMES

Date: 13-01-26

Energy Flywheel Gathers Momentum

High demand and weak reforms could risk it

ET Editorial

India is moving closer to achieving energy security by addressing chronic bottlenecks. Coal production now exceeds 1 bn tonnes, with both Coal India and private miners posting healthy growth. The US intervention in Venezuela signals its intent to maintain oversupply in the oil market. Changes in liability laws are expected to draw private capital into nuclear energy. Renewables now constitute over half the total installed power capacity, a milestone in the country's effort to create 500 GW of non-fuel capacity in the next 5 yrs. Each of these achievements involves policy reorientation to access energy from all sources to maintain economic momentum over a period of anticipated high growth.

The country is well-placed to negotiate external pressure over sourcing crude oil from affordable sources, such as Russia, if the glut persists in the market. India will be driving incremental energy demand globally and would find itself boxed in if the crude oil market were to turn tight. Oil-producing nations are finding it difficult to stick to production quotas, and with the prospect of additional reserves being tapped, their job becomes even more difficult. India has maintained a neutral stance on sourcing cru-de oil and natural gas, which makes switching vendors simple. It also allows New Delhi to deflect criticism over the strategic impact of its energy imports.

The economy has a low-energy intensity, but the scenario is projected to change with greater policy focus on manufacturing exports. New technologies like AI and EVs will contribute to India's incremental energy demand. The work that has gone into improving the supply response in the energy market will, however, have to be matched by improvements on the demand side. India must get its energy pricing right to be able to successfully harness it for accelerated growth. Politicisation of electricity prices has eluded successive rounds of reforms. It remains an area of concern because it affects the investment climate. The distribution bottleneck, if left unaddressed, will impact upstream revenue.

दैनिक भास्कर

Date: 13-01-26

'रैयर - अर्थ' का बढ़ रहा है भू-राजनीतिक महत्व

संपादकीय

वॉशिंगटन में जी-7 के संपन्न देशों के वित्त मंत्रियों की बैठक में सुरक्षा के अलावा अन्य उद्योगों की रीढ़ बने रेयर - अर्थ मटैरियल्स के उत्पादन को युद्ध स्तर पर शुरू करने की गुहार लगाई गई है। इस बैठक में सात प्रमुख देशों के अलावा भारत सहित चार और देश भी आमंत्रित हैं। दरअसल चंद दिनों पहले चीन द्वारा जापान को क्रिटिकल मिनरल्स और रेयर - अर्थ की आपूर्ति रोकने की घटना से अमेरिका तर्क हो गया है। वैसे तो चीन ने यूएस से सोयाबीन व मक्का खरीद बढ़ा दी है और रेयर - अर्थ तत्वों की सप्लाई भी जारी रखी है, लेकिन वेनेजुएला में अमेरिकी दखलंदाजी के बाद चीन सख्त हो सकता है। अमेरिका ने पिछले जून में भी कनाडा बैठक में यह मुद्दा उठाया था लेकिन उस समय किसी भी सदस्य ने चीन को नाराज नहीं करने की मनोस्थिति के कारण इस संकट पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। बहरहाल, अब ट्रम्प को रेयर - अर्थ की सप्लाई को लेकर चीन से खतरा नजर आ रहा है। फिलहाल चीन दुनिया के कुल रेयर - अर्थ मटैरियल्स का 47 से 87% तक शोधित-संवर्धित करता है। पहली बार अमेरिका ने रेयर - अर्थ उत्पादन को सुरक्षा के एजेंडा में रखकर इसे सबसे उच्चतम वरीयता दी है। इस बैठक के परिणाम से ही यह पता चल सकेगा कि क्या अमेरिका इन सब के लिए ऑस्ट्रेलिया, कनाडा या भारत को आर्थिक और तकनीकी मदद देगा ?

Date: 13-01-26

अच्छी विकास दर के बावजूद तेजी से नहीं बढ़ रहे हैं हम

रुचिर शर्मा, (ग्लोबल इन्वेस्टर व बेस्टसेलिंग राइटर)

ये सच है कि भारत अभी भी अच्छी आर्थिक वृद्धि दर दर्ज कर रहा है। लेकिन अब उसे पहले जैसा उत्साह या भरोसा नहीं मिल रहा है। देश में विदेशी पूंजी का प्रवाह सूखता जा रहा है, जो इस बात का संकेत है कि बाहरी निवेशकों को लगता है, 8% से अधिक बताई जा रही जीडीपी वृद्धि दर के पीछे कुछ बुनियादी कमजोरियां छिपी हैं।

सबसे आश्चर्य की बात यह है कि आम तौर पर किसी भी देश में कॉर्पोरेट राजस्व अर्थव्यवस्था के साथ-साथ ही बढ़ता या घटता है। लेकिन पिछले साल भारत में सूचीबद्ध कंपनियों की कॉर्पोरेट राजस्व वृद्धि दर, जीडीपी वृद्धि की तुलना में मुश्किल से आधी रही। जीडीपी आंकड़ों से संतुष्ट होने के बजाय भारत के नीति-निर्माताओं को समस्याओं पर ध्यान देना होगा।

कमजोरी के प्रमुख संकेतों में एक यह है कि भारत से पहले की तुलना में ज्यादा लोग पलायन कर रहे हैं और वह बहुत कम पूंजी आकर्षित कर पा रहा है। इस दशक में हर साल औसतन 6.75 लाख लोग भारत से बाहर जाकर बस रहे हैं, जबकि 2010 के दशक में यह संख्या 3.25 लाख थी।

पाकिस्तान, बांग्लादेश और यूक्रेन ने ही इससे बड़ा पलायन देखा है। चीन अभी भी पिछले दशक की तरह ही सालाना लगभग 3 लाख लोगों को खो रहा है। भारत से बाहर जाने वालों में एक बड़ा हिस्सा 'ब्रेन ड्रेन' का है- यानी ठीक वे ही कुशल पेशेवर, जिनकी जरूरत उसे उन्नत क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा करने के लिए है। इसका नतीजा यह है कि आज सिलिकॉन वैली के तकनीकी कार्यबल का लगभग एक-तिहाई हिस्सा भारतीयों का हो गया है।

युवाओं को नौकरियां नहीं मिल रही हैं। यहां तक कि प्रतिष्ठित आईआईटी में भी 2024 में 38% छात्र ऐसे रहे, जिन्हें कैम्पस प्लेसमेंट के दौरान नौकरी का एक भी प्रस्ताव नहीं मिला। बेहतर रोजगार की तलाश में कई भारतीय उन गिने-चुने देशों की ओर जा रहे हैं, जो अभी भी प्रवासियों के प्रति अपेक्षाकृत अनुकूल हैं- जैसे यूएई और सऊदी अरब- जहां कंस्ट्रक्शन-बूम ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया है।

भारत लंबे समय से विदेशों से सीमित मात्रा में पूंजी ही आकर्षित कर पाया है, जिसका एक बड़ा कारण अब भी बना हुआ 'लाइसेंस राज' है। यह जमीन हासिल करने या श्रमिकों को नियुक्त करने या हटाने की प्रक्रिया को अत्यधिक महंगा और जटिल बना देता है। जिन एशियाई अर्थव्यवस्थाओं ने तेज और टिकाऊ वृद्धि दर्ज की है- जैसे पहले चीन और हाल के वर्षों में वियतनाम- उनके उछाल के दौर में शुद्ध एफडीआई जीडीपी के 4% से ऊपर पहुंच गया था।

भारत में यह आंकड़ा कभी भी 1.5% से आगे नहीं बढ़ पाया और अब तो यह घटकर मात्र 0.1% रह गया है। पिछले एक दशक में, शुद्ध एफडीआई/जीडीपी के आधार पर भारत की रैंकिंग 25 सबसे बड़े उभरते देशों में 12वें स्थान से फिसलकर 19वें स्थान पर आ गई है।

बिजनेस के लिए एक मुश्किल जगह होने की भारत की पुरानी छवि के अलावा कुछ नए जोखिम भी विदेशी निवेशकों को रोक रहे हैं। इनमें पड़ोसी देशों के साथ नई दिल्ली के बिगड़ते रिश्ते, अमेरिका के साथ टैरिफ युद्ध और भारत की तकनीकी क्षमता को लेकर संदेह शामिल हैं। चीन और ताइवान अपनी जीडीपी का 2.5% से अधिक रिसर्च एवं विकास (आरएंडडी) पर खर्च करते हैं; जबकि भारत में यह खर्च पिछले वर्ष मात्र 0.65% रहा। ऐसे में हैरानी की बात नहीं कि एआई के क्षेत्र में भारत के पास कोई बड़े नाम नहीं हैं।

इन कमजोरियों का असर वित्तीय बाजारों पर भी पड़ रहा है। लंबे सूखे के बाद, उभरती अर्थव्यवस्थाओं के शेयर बाजारों में पिछले वर्ष अंततः शुद्ध निवेश प्रवाह लौटा। लेकिन भारत ने इसके उलट 19 अरब डॉलर का रिकॉर्ड नेट आउट-फ्लो देखा। विदेशी निवेशकों की भारी बिकवाली का सामना घरेलू निवेशकों ने किया, जहां परिवारों ने इक्विटी में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाने में ऐतिहासिक रूप से कम रुचि दिखाई। इसके बावजूद, भारतीय शेयर बाजार पिछले वर्ष अपने समकक्ष देशों की तुलना में काफी पीछे रहा।

तेज ग्रोथ के लिए भारत को कहीं अधिक विदेशी पूंजी की आवश्यकता है, क्योंकि उसका घरेलू बचत आधार पर्याप्त नहीं है। पूर्वी एशिया के आर्थिक चमत्कारों के विपरीत भारत का मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र कमजोर रहा है, इसलिए वह कभी निर्यात महाशक्ति नहीं बन सका और लगभग हमेशा चालू खाते के घाटे में रहा। यह कोई संयोग नहीं है कि पिछले एक दशक में भारत में घरेलू निजी निवेश भी सुस्त रहा है। भारत किसी 'आर्थिक चमत्कार' के रास्ते पर तभी दिखाई देगा, जब उसके यहां अधिक पूंजी आएगी और उसके यहां से कम प्रतिभाएं बाहर जाएंगी।

युवाओं को नौकरियां नहीं मिल रही हैं। आईआईटी में भी 2024 में 38% छात्र ऐसे रहे, जिन्हें कैम्पस प्लेसमेंट के दौरान नौकरी का एक भी प्रस्ताव नहीं मिला। बेहतर रोजगार की तलाश में कई भारतीय दूसरे देशों की ओर जा रहे हैं।

दैनिक जागरण

Date: 13-01-26

मनरेगा की खामियां

संपादकीय

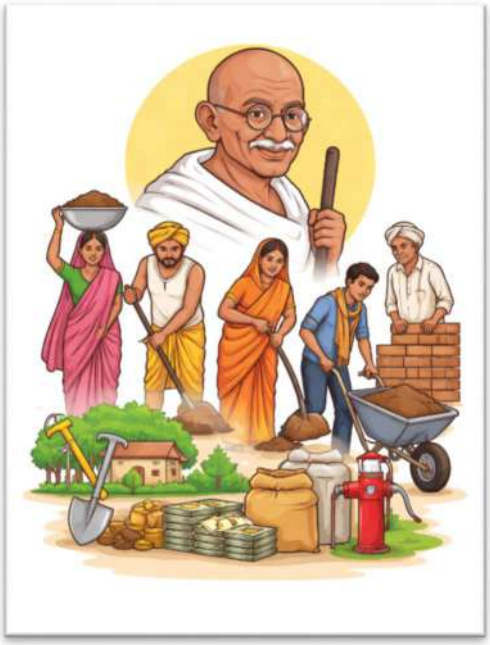

कांग्रेस की ओर से छेड़े गए मनरेगा बचाओ अभियान के बीच ग्रामीण रोजगार गारंटी से जुड़े इस कानून के क्रियान्वयन में व्याप्त खामियों के जैसे विवरण सामने आ रहे हैं, उससे इस अभियान की निरर्थकता ही सिद्ध होती है। हाल में मात्र 55 जिलों में तीन सौ करोड़ रुपये से अधिक के घोटाले सामने आए थे। ये घोटाले यह बता रहे थे कि मनरेगा के तहत बिना मंजूरी भुगतान करने के साथ अनावश्यक कार्यों पर पैसा खर्च किया जा रहा था।

ग्रामीण विकास मंत्रालय की जांच-पड़ताल ने यह भी बताया कि मनरेगा को संचालित करने के तौर-तरीके ही ऐसे थे, जो भ्रष्टाचार को पनपने का अवसर देते थे। इस कारण करोड़ों रुपये के जो काम कागजों पर दिखते थे, वे धरातल पर नजर नहीं आते थे। चूंकि मनरेगा के जरिये होने वाले कामों के निरीक्षण की कोई ठोस व्यवस्था नहीं थी, इसलिए सरकारी धन की बंदरबाट होती रहती थी।

इसके खिलाफ कोई आवाज इसलिए अनसुनी रहती थी, क्योंकि इस बंदरबाट में सभी शामिल रहते थे। अच्छा होता कि 20 वर्ष पहले लागू किए गए इस कानून में और पहले ही परिवर्तन कर दिए जाते। ऐसा इसलिए नहीं हो सका, क्योंकि इस कानून में किसी तरह का फेरबदल राजनीतिक दृष्टि से जोखिम भरा था।

यह किसी से छिपा नहीं कि मनरेगा में बदलाव की आवाज उठाने वालों को तत्काल प्रभाव से गरीब विरोधी करार दिया जाता था। अभी जब मनरेगा के रूप-स्वरूप में परिवर्तन करते हुए उसे वीबी- जीरामजी नाम दिया गया तो मोदी सरकार को गरीब विरोधी साबित करने में एक क्षण की भी देरी नहीं की गई।

कांग्रेस के मनरेगा बचाओ अभियान का उद्देश्य मोदी सरकार को गरीब विरोधी साबित करना ही है, पर वह इसमें शायद ही सफल हो पाए, क्योंकि उसके पास इसका उत्तर नहीं कि मनरेगा के अमल में इतनी गड़बड़ियां क्यों हो रही थीं? आखिर रोजगार गारंटी के नाम पर हुए भ्रष्टाचार की जवाबदेही कौन लेगा?

इसकी समीक्षा क्यों नहीं की जानी चाहिए थी कि मनरेगा कानून कितना प्रभावी सिद्ध हुआ और उससे ग्रामीण क्षेत्रों में कोई बुनियादी बदलाव आ सका या नहीं? जन कल्याण और विकास की योजनाओं की समय-समय पर समीक्षा तो सरकार का दायित्व है।

कोई योजना इस कारण समीक्षा से परे नहीं हो सकती कि उसे पहले की सरकार ने शुरू किया था। उचित होता कि कांग्रेस मनरेगा में बदलाव की प्रक्रिया में योगदान देती और उसमें सुधार का श्रेय खुद भी लेती, लेकिन संकीर्ण राजनीतिक कारणों से उसने यह अवसर गंवा दिया।

इसमें संदेह है कि उसे मनरेगा बचाओ अभियान से किसी तरह का राजनीतिक लाभ मिलेगा, क्योंकि सभी और यहां तक ग्रामीण जनता भी यह समझ रही है कि इस कानून के पुराने स्वरूप से अपेक्षित नतीजे हासिल नहीं हो रहे थे।

जनसत्ता

Date: 13-01-26

अंतरिक्ष में बढ़ते कचरे से उपजे खतरे

विजन कुमार पांडेय

अंतरिक्ष अब मानव सभ्यता की दूरस्थ सीमा नहीं रहा। आज यह हमारे रोजमर्रा के जीवन, राष्ट्रीय सुरक्षा, अर्थव्यवस्था और भू-राजनीति का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। संचार उपग्रहों से लेकर मौसम पूर्वानुमान, आपदा प्रबंधन और सैन्य निगरानी तक, आधुनिक दुनिया की धड़कन अंतरिक्ष से जुड़ी है। मगर इसी प्रगति के साथ एक ऐसा संकट भी जन्म ले चुका है, जिस पर गंभीरता से चर्चा नहीं होती। वह है-अंतरिक्ष में बढ़ रहा कचरा और उससे अंतरिक्ष यात्रियों की सुरक्षा को खतरे का मसला। यह केवल तकनीकी चुनौती नहीं, बल्कि मानव जीवन, वैश्विक सहयोग और भविष्य की अंतरिक्ष नीति से जुड़ा प्रश्न है। आज जब दुनिया चंद्रमा, मंगल और उससे आगे मानव की उपस्थिति को लेकर योजना बना रही है, तब यह पूछना अनिवार्य हो जाता है कि क्या हमने पृथ्वी के आसपास के अंतरिक्ष को सुरक्षित रखा है?

पिछले छह दशकों में अंतरिक्ष गतिविधियों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। हजारों उपग्रह, सैकड़ों प्रक्षेपण और अनगिनत प्रयोग। इन सबका एक अनचाहा परिणाम है-अंतरिक्ष में फैल रहा मलबा। निष्क्रिय उपग्रह, टकराव से बने टुकड़े और सूक्ष्म कण आज पृथ्वी की कक्षा में एक अनियंत्रित जाल की तरह फैल चुके हैं। समस्या केवल संख्या की नहीं, बल्कि शृंखलाबद्ध खतरे की है। दो वस्तुओं की टक्कर से मलबा और बढ़ता है, जो आगे और टकराव को जन्म देता है। वैज्ञानिक इसे 'केसलर सिंड्रोम' कहते हैं। यानी एक ऐसी स्थिति, जहां कक्षा में मलबा इतना बढ़ जाए कि अंतरिक्ष गतिविधियां ही असंभव हो जाएं। इस परिदृश्य में सबसे पहले और सबसे ज्यादा खतरे में होंगे मानवयुक्त मिशन और अंतरिक्ष यात्री।

अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन (आइएसएस) मानव सभ्यता की सबसे जटिल संरचना है। मगर यह उपलब्धि भी एक असुरक्षित वातावरण में टिकी है। लगभग चार सौ किलोमीटर की ऊंचाई पर यह स्टेशन उसी कक्षा में है, जहां सबसे अधिक मलबा मौजूद है। यह विडंबना ही है कि अत्याधुनिक तकनीक से लैस अंतरिक्ष यात्री एक ऐसे वातावरण में काम करते हैं, जहां पेंट का एक कण भी प्राणघातक बन सकता है। सात से आठ किलोमीटर प्रति सेकंड की रफ्तार से घूमता मलबा किसी भी मानवीय प्रतिक्रिया से कहीं तेज है। यानी खतरे की स्थिति में निर्णय का समय सेकंड से भी कम होता है। यहां यह सवाल उठता है कि क्या हम अंतरिक्ष यात्रियों की सुरक्षा को केवल तकनीकी प्रबंधन का विषय मान कर संतुष्ट हो सकते हैं या यह एक गहरे नीति-स्तरीय हस्तक्षेप की मांग करता है?

आज अंतरिक्ष मलबे से बचाव का सबसे अहम आधार है- निगरानी और पूर्व चेतावनी। शक्तिशाली रडार और दूरबीन हजारों वस्तुओं की निगरानी करते हैं। मगर इस व्यवस्था की एक मौलिक सीमा है। केवल बड़े टुकड़ों का ही सटीक रूप से पता किया जा सकता है। लाखों छोटे कण ऐसे हैं, जो निगरानी तंत्र से बाहर हैं। मगर उनके टकराने की संभावना बनी रहती है। इसका अर्थ यह हुआ कि अंतरिक्ष यात्रियों की सुरक्षा एक आंशिक जानकारी पर आधारित है, पूर्ण नियंत्रण पर नहीं। जब पृथ्वी की कक्षा में घूमता कोई अंतरिक्ष मलबा अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन के बहुत पास से गुजरने वाला होता है, तब स्टेशन की कक्षा को थोड़ी देर के लिए बदला जाता है।

यह उपाय अब अंतरिक्ष यात्रियों की सुरक्षा का एक नियमित हिस्सा बन चुका है। मगर यही तथ्य अपने-आप में यह बताने के लिए काफी है कि अंतरिक्ष कचरे की समस्या कितनी गंभीर हो चुकी है। कक्षा बदलना देखने में भले ही एक छोटा सा तकनीकी कदम लगे, लेकिन इसके पीछे बड़ी कीमत छिपी होती है। अंतरिक्ष स्टेशन अपने आप नहीं घूमता, बल्कि उसे सही कक्षा में बनाए रखने के लिए लगातार ईंधन की जरूरत पड़ती है। जब भी स्टेशन को ऊपर या नीचे किया जाता है, तो इंजन चलाए जाते हैं। इससे कीमती ईंधन खर्च होता है। यह ईंधन सीमित होता है और भविष्य की आपात स्थितियों के लिए भी बचा कर रखना पड़ता है। यानी हर बार कक्षा बदलने से स्टेशन की जीवन अवधि थोड़ी कम हो जाती है। इसका दूसरा असर स्टेशन के संसाधनों पर पड़ता है। कक्षा बदलने की प्रक्रिया के दौरान वैज्ञानिक प्रयोगों को रोकना पड़ता है।

दीर्घकालिक अभियानों के लिए यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है। अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन को दशकों तक काम करने के लिए तैयार किया गया है। मगर बार-बार होने वाले कक्षा परिवर्तन उसकी संरचना, उपकरणों और योजनाओं पर दबाव डालते हैं। जितनी बार ऐसे बदलाव होंगे, उतना ही अधिक जोखिम भविष्य के अभियानों के लिए पैदा होगा। दूसरे शब्दों मे कहें तो मलबे से बचने की कोशिश करते-करते हम खुद अपनी अंतरिक्ष क्षमता को सीमित कर रहे हैं। सबसे अहम बात यह है कि कक्षा बदलना समस्या का समाधान नहीं, बल्कि उसका अस्थायी इलाज है। अंतरिक्ष स्टेशन की कक्षा बदलने की बढ़ती घटनाएं एक बड़ी चेतावनी हैं। वे बताती हैं कि अंतरिक्ष में कचरे का बढ़ता दायरा अब भविष्य का खतरा नहीं, बल्कि वर्तमान की समस्या बन चुका है।

इसलिए कक्षा बदलने को तकनीकी सफलता मानने के साथ-साथ इसे एक चेतावनी संकेत के रूप में भी देखना जरूरी है कि अंतरिक्ष को हमने जितनी तेजी से इस्तेमाल किया है, उतनी ही तेजी से उसे साफ और सुरक्षित बनाने की जिम्मेदारी भी निभानी होगी। हालांकि अंतरिक्ष स्टेशन को विशेष ढालों से सुरक्षित किया गया है, जो छोटे मलबे को झेल सकती हैं, लेकिन बड़ा मलबा अब भी गंभीर खतरा बना हुआ है। आपात स्थितियों के लिए अंतरिक्ष यात्रियों को कठोर प्रशिक्षण दिया जाता है। मगर यह प्रशिक्षण भी उस स्थिति में सीमित हो जाता है, जब टकराव अचानक और विनाशकारी हो।

अंतरिक्ष में बढ़ते कचरे से निपटने का स्थायी समाधान बचाव नहीं, बल्कि सफाई है। मगर यही वह बिंदु है, जहां वैश्विक राजनीति और राष्ट्रीय हित आड़े आ जाते हैं। किसका मलबा हटाया जाए? कौन खर्च उठाए? क्या किसी देश का निष्क्रिय उपग्रह दूसरे देश द्वारा हटाया जा सकता है? ये सवाल तकनीक से ज्यादा राजनीतिक हैं। जब तक अंतरिक्ष को साझा विरासत मान कर संयुक्त जिम्मेदारी तय नहीं की जाती, तब तक मलबा हटाने की पहल सीमित प्रयोगों तक ही सिमटी रहेगी।

भारत गगनयान मिशन की ओर बढ़ रहा है। इसका अर्थ है कि अंतरिक्ष मलबा अब भारत के लिए भी सैद्धांतिक नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष मानवीय जोखिम बन चुका है। यह चेतावनी भी है और अवसर भी। चेतावनी इसलिए कि लापरवाही भविष्य में भारी पड़ सकती है। अवसर इसलिए कि भारत जिम्मेदार और नैतिक अंतरिक्ष शक्ति के रूप में वैश्विक नेतृत्व दिखा सकता है। अंतरिक्ष मानवता की साझा संपदा है, न किसी एक देश की और न किसी एक पीढ़ी की। इसने हमें संचार, विज्ञान और भविष्य के सपने दिए हैं, लेकिन आज वही अंतरिक्ष मलबे से भरता जा रहा है। अंतरिक्ष को गंदा करना आसान है, पर सुरक्षित रखना कठिन। इसके लिए दूरदर्शिता चाहिए, ताकि तात्कालिक लाभ से ऊपर उठकर भविष्य को बचाया जा सके। संयम चाहिए, ताकि हर देश जिम्मेदारी से व्यवहार करे और वैश्विक सहयोग चाहिए, क्योंकि अंतरिक्ष किसी सीमा में नहीं बंधा है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 13-01-26

ईरान में बगावत

संपादकीय

ईरान में चल रही बगावत पर पूरी दुनिया की निगाह स्वाभाविक है। ईरान में सर्वोच्च नेता अयातुल्ला अली ख़ामेनेई के नेतृत्व वाली मजहबी सरकार के खिलाफ लगातार तीसरे सप्ताह राष्ट्रव्यापी विरोध-प्रदर्शन हो रहे हैं। इसमें महिलाओं की बड़ी भागीदारी है और वे हिजाब या बुर्के से आजादी के लिए बेचैन लग रही हैं। ईरान में बदलाव चाहने वालों ने एक अलग ही ध्वज बना लिया है और जहां भी मौका मिल रहा है, वहीं वे ईरान के वर्तमान ध्वज को हटाकर अपना ध्वज लगा दे रहे हैं। ऐसा नहीं है कि ईरानी प्रशासन चुपचाप सब कुछ देख रहा हो । प्रतिदिन वहां लोग मारे जा रहे हैं। दूसरी ओर, अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने कहा है कि अमेरिका अशांति पर कड़ी नजर रख रहा है और हरसंभव विकल्पों पर विचार कर रहा है। एक बड़ी आशंका यह है कि अमेरिका सैन्य हस्तक्षेप कर सकता है। फिलहाल, वह ईरान में विरोध-प्रदर्शनों को लगातार हवा दे रहा है और इसके नतीजे घातक हो सकते हैं।

क्या अमेरिका पूरी सावधानी से ईरान में बदलाव को अंजाम देगा ? क्या बाकी पश्चिमी देश अमेरिका या ईरान में बदलाव के पक्ष में हैं? ध्यान रहे, साल 2022 में भी ईरान में बदलाव के लिए प्रदर्शन हुए थे, लेकिन वहां की सरकार ने उस विरोध को कुचल दिया था। इस बार भी यही हो रहा है, विरोध को बेरहमी से कुचला जा रहा है। वर्तमान शासन को भी अपने बचाव का हक है। वैसे, एक बड़ा जोखिम यह है कि विद्रोह को हवा देकर अमेरिका पीछे न हट जाए। दुनिया में

अनेक देश हैं, जहां पर ऐसे विरोध हुए हैं, कभी लोकतंत्र के पक्ष में, तो कहीं कट्टरपंथ के खिलाफ, लेकिन अक्सर देखा गया है कि एक सीमा के बाद पश्चिमी देश पीछे हट जाते हैं। आज यूक्रेन अगर युद्ध झेल रहा है, तो इसके लिए पश्चिमी देश और नाटो के देश भी जिम्मेदार हैं। किसी को विरोध के लिए उकसा देना आसान है, लेकिन विरोधियों की प्राण-रक्षा के लिए जमीन पर उतरना मुश्किल है। जब कोई देश तबाह होने लगता है, तब उसके निकट समर्थक भी मुंह चुराने लगते हैं। अमेरिका यह बात जानता है कि ईरानी प्रदर्शनों में 540 से अधिक लोग मारे गए हैं और 10,000 से ज्यादा लोग गिरफ्तार हुए हैं। इन देशों में जो कट्टरता देखी जाती है, वह अपने साथ बर्बरता भी लाती है। बगावत करने वालों को बर्बरता झेलनी पड़ती है। यह दुआ जरूर करनी चाहिए किईरान में कम से कम बर्बरता हो । ईरान में अमेरिका क्या इंसानियत को लहूलुहान होने से बचा सकता है ?

ईरान में बहुत कुछ ऐसा हो रहा है, जो पहले नहीं हुआ था । वहां इंटरनेट सेवा को सरकार ने रोक दिया है, लेकिन एलन मस्क की मदद से अमेरिका वहां इंटरनेट सेवा बहाल रखना चाहता है। इसके बावजूद अमेरिका अगर जमीनी स्तर पर नहीं उतरेगा और विरोधियों को केवल बाहर से समर्थन देता रहेगा, तो यकीन मानिए, ईरान अपनी नई पीढ़ी के उन तमाम मर्दों और औरतों को गंवा देगा, जो बदलाव के पक्ष में बिगुल बजा रहे हैं। ध्यान रहे, साल 1979 में सत्ता से हटाए गए ईरानी शाह के अमेरिका में रहने वाले बेटे रजा पहलवी भी बगावत को हवा दे रहे हैं। वह लोकतांत्रिक सरकार की ओर बदलाव का नेतृत्व करने के लिए ईरान लौटने को तैयार हैं। यह तरीका भी निंदनीय हैं। ईरान में नया निजाम अभी दूर की कौड़ी है, लेकिन दूर देश में बैठा एक शख्स नया बादशाह बनने के लिए तैयार है। लड़ने या बदलाव चाहने का यह सलीका सही नहीं है। यहां सवाल किसी शासन को बचाने या हटाने का नहीं, सिर्फ इंसानियत का है और वह हर हाल में बची रहनी चाहिए।

Date: 13-01-26

अमेरिका से दूर होते यूरोप में भारत के लिए अवसर

नितिन पाई, (निदेशक, तक्षशिला संस्थान)

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने पिछले हफ्ते सोशल मीडिया पोस्ट में लिखा कि अमेरिका के बिना नाटो कुछ भी नहीं। ग्रीनलैंड की अपनी लालसा के संदर्भ में उन्होंने यह टिप्पणी की थी। इससे नाटो में टूट की आशंका बढ़ गई है, जिसका हिस्सा खुद अमेरिका भी है। हालांकि, डेनमार्क के संजीदा लोग यही मानते हैं कि अमेरिका आसानी से कब्जा कर सकता है। शेन हैरिस और उनके साथियों ने द अटलांटिक में लिखा है कि यह नियंत्रण राष्ट्रपति ट्रंप द्वारा सोशल मीडिया पर बस इस एक एलान के साथ हो सकता है कि यह इलाका अब अमेरिका का हिस्सा है। इसका विरोध न तो डेनमार्क करेगा और नही कोई अन्य नाटो सदस्य, क्योंकि वाशिंगटन से टकराने की कुब्बत उनमें नहीं है।

इस पूरे मामले ने यूरोपीय देशों के फिर से हथियार- संपन्न होने की जरूरत पर नई बहस खड़ी कर दी है। यूरोपीय देशों की चिंता वाशिंगटन की नई राष्ट्रीय सुरक्षा नीति (एनएसएस) ने भी बढ़ा दी है, जिससे न सिर्फ यूरोप की सुरक्षा की 80 वर्ष पुरानी प्रतिबद्धता से अमेरिका के पलटने के संकेत मिलते हैं, बल्कि इसमें दक्षिणपंथी पार्टियों को समर्थन देकर यूरोप में राजनीतिक दखल देने की उसकी इच्छा भी दिखती है। बीते एक सालमें, यूरोपीय संघ और उसके सदस्य देशों ने

रक्षा खर्च बढ़ाने के लिए कई उपायों की घोषणा की है। खुद को फिर से हथियार संपन्न बनाने के लिए उन्होंने अपने रक्षा व्यय को आगामी वर्षों में जीडीपी का 3.5 फीसदी करने (फिलहाल यह दो फीसदी है) और साल 2035 तक पांच प्रतिशत तक ले जाने की योजना बनाई है। इसके लिए जरूरी कानूनी रास्ता साफ कर दिया गया है, ताकि राजकोषीय घाटा बढ़ाया जा सके। जाहिर है, आने वाले साल यूरोपीय समाज के लिए मुश्किल भरे हो सकते हैं, क्योंकि सेनापर खर्च बढ़ाने के लिएलोक-कल्याणकारी और पर्यावरण संरक्षण से जुड़े कार्यक्रमों में आर्थिक कटौती करनी पड़ सकती है।

उनकी चुनौती सिर्फ यही नहीं है। सशस्त्र बलों में शामिल होने के लिए नौजवानों को मनाना उनके लिए कहीं ज्याद कठिन काम होगा। खुशहाल समाजमें पले- बढ़े युवाओं को सैन्य करियर चुनने के लिए प्रेरित करना यूरोपीय राजनेताओं की परीक्षा लेगा। फिर, उन बलों को भरोसेमंद लड़ने वाली ताकत बनाना भी कम चुनौतीपूर्ण काम नहीं होगा। नाटो एक ढांचा तो मुहैया कराता है,

लेकिन अमेरिका के बिना यह व्यवस्था सूनी पड़ जाएगी, जिसमें नया प्राण फूंकना आसान नहीं है। यूरोपीय सैन्य गठबंधन, भले ही उसमें ब्रिटेन और तुर्किये भी शामिल हो जाएं, सिर्फ अमेरिका-विहीन नाटो नहीं होगा, बल्कि वह पूरी तरह से एक नया गठजोड़ होगा, जिसमें अलग राजनीति, कमांड ढांचा, खतरे की समझ और नागरिक- सैन्य संबंध होंगे। इस पूरी कवायदकोयूरोपकी राजनीति प्रभावित कर सकती है, क्योंकि यदि जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन और पोलैंड में वाशिंगटन के प्रति आकर्षण रखने वाली दक्षिणपंथी पार्टियों को जीत मिलती है, तो ये देश अमेरिका के साथ तालमेल बनाकर आगे बढ़ सकते हैं। अगर ऐसा नहीं होता है, तभी यूरोप एक अलग रास्ता अपना सकेगा ।

फिलहाल यह बात तो तय है कि यूक्रेन युद्ध, अमेरिकी राष्ट्रीय सुरक्षा नीति और ग्रीनलैंड विवाद जैसे बाहरी दबाव फिर से हथियार संपन्नबनने की यूरोप की कोशिश को रफ्तार देंगे। यहां रूस का व्यवहार निर्णायक होगा। एक आक्रामक रूस सबका ध्यान खींचेगा और ऐसे फैसलों को तीव्रता देगा, जिनको शायद टाला जा सकता था । यूरोप की कूटनीति भी इसी हिसाब से तय होगी। यहां ग्रेट ब्रिटेन भी अहम हो सकता है, बशर्ते वह अमेरिका और यूरोपके बीच बढ़ते मतभेदों के कारण टूटने से बच सके ।

भारत के लिए इस नई परिस्थिति में मौके के दरवाजे खुल रहे हैं। एक ऐसा यूरोप, जो वाशिंगटन पर कम निर्भर हो, अपनी सुरक्षा पर कहीं ज्यादा ध्यान देगा और वह अलग-अलग साझेदार भी ढूंढ़ेगा। एक रक्षा साझेदार के रूप में भारत बड़े पैमाने पर रक्षा उपकरणों का उत्पादन करके यूरोप को अपनी लागत कम करने में मदद कर सकताहै। हालांकि, भारत की रूस से दोस्ती और यूरोप- चीन के रिश्ते ही ये तय करेंगे कि दोनों देश (भारत व चीन) कितना कर सकते हैं और कितनी तेजी से ।